वैश्वीकरण का सामाजिक समरसता में योगदान का विवेचन

डॉ0 निर्मल सिंह यादव,

आकाशवाणी के सामने ठाठीपुर गाँव,गाँधी रोड,ग्वालियर(म.प्र.)

भारत में वैश्वीकरण का प्रारम्भ सत्रहवीं शताब्दी से उपनिवेशवाद के रूप में हुआ, जिसके अगुआ इंग्लैण्ड एवं फ्रांस जैसे देश रहे। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि सन् 1980 ई0 के दशक के बाद से अमेरिका जैसे विकसित राष्ट्रों ने आर्थिक मंदी से उबरने और अपने उत्पादों की बिक्री हेतु विश्व के अन्य देशों की बाजार–व्यवस्था में हस्तक्षेप करने की दृष्टि से उदारीकरण की नीति, मुक्त बाजार व्यवस्था, विश्व अर्थव्यवस्था तथा प्रौद्योगिकी के एकीकरण की नीति के तहत प्रारम्भ की, उसी के परिणामस्वरूप वैश्वीकरण का जन्म हुआ। वैश्वीकरण या भूमण्डलीकरण का विचार बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध की देन है, जो विभिन्न राष्ट्रों की सत्ता, स्वायत्तता तथा कल्याणकारी कार्यों एवं उदारवादी समाजों, के लोकतांत्रिक मूल्यों के लिये एक नवीन चुनौती बनकर उभरा है तथा जिसका राष्ट्रों, विशेष रूप से विकासशील एवं अर्द्धविकसित राष्ट्रों की अर्थव्यवस्था पर मिश्रित प्रभाव पड़ता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया के कारण राष्ट्र–राज्यों की स्वायत्तता एवं सम्प्रभुता के विकास के मुद्दों के संदर्भ में सिकुड़ रही है। अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों, विश्व व्यापार संगठन तथा, बहुराष्ट्रीय निगमों, पर राष्ट्रीय संगठनों द्वारा लादी गयी शर्तों एवं दिशा–निर्देशों ने जहाँ एक ओर लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रभावित किया है, वहीं दूसरी ओर राज्यों की प्रभुसत्ता को भी सीमित करने का प्रयास किया है।

वैश्वीकरण (भूमण्डलीकरण) की अवधरणा का उदय सर्वप्रथम सन् 1990 ई0 में 'राबर्टसन' महोदय के एक लेख से हुआ, जिसका शीर्षक था ''मैपिंग ग्लोबल कन्डीशन''। 'ग्लोबलाइजेशन ऐज द सेन्ट्रल कान्सेप्ट' का संकलन 'फीदर स्टोन' द्वारा सम्पादित पुस्तक 'ग्लोबल कल्चर' में हुआ। इस लेख में वैश्वीकरण के विश्लेषणात्मक तथा आनुभविक तथ्यों को स्पष्ट किया गया है। भारत में वैश्वीकरण का आरम्भ सन् 1991 ई0 में हुआ, तब पी. बी. नरसिंह राव भारत के प्रधानमंत्री थे और मनमोहन सिंह, वित्तमंत्री थे। यह नये आर्थिक युग का सूत्रपात था। इसमें जो अर्थव्यवस्था स्थापित हुई वह 'संघीय बाजार व्यवस्था' बन गयी। इससे राज्यों को यह अधिकार मिल गया कि केन्द्रीय योजना व्यवस्था के अन्तर्गत वे अपनी वित्तीय स्थिति में परिवर्तन कर सकते हैं। इस व्यवस्था में सुधर आता है या खराबी इसके लिये राज्य ही उत्तरदायी होंगे। यह नयी व्यवस्था एक प्रकार से 'नियंत्रण अर्थव्यवस्था' (कमांड इकोनामी) से संघीय अर्थव्यवस्था (फेडरल इकानामी) में बदल गयी। इस प्रकार आर्थिक वैश्वीकरण का सूत्रपात सरकारी स्तर पर सन् 1991 ई0 से हुआ। और इस व्यवस्था ने लोगों को आगे बढ़ापने के साथ भेदभाव भी शुरू किए।

जब भारत परतन्त्र था, सर्वप्रथम मुसलमानों ने इसे लूटने का प्रयास किया, मुसलमानों के बाद अंग्रेजों का जमाना आया, काफी दिनों तक अंग्रेज रहे। अंग्रेजों के बाद देश स्वतंत्र हुआ और शिक्षा का अंग्रेजीकरण हुआ, जिसमें स्त्री और शूद्र को भी पढ़ने का अधिकार दिया गया, पर शूद्र सामाजिक दृष्टिकोण से दबाये गये थे, उनके घर भोजन के लाले पड़े थे तथा रूढ़िवादिता एवं कट्टरता से समाज जकड़ा हुआ था। यदि चमार या ऐसे ही कमजोर वर्ग के लड़के विद्यालय भी जाते थे तो उन्हें अलग

बैठाया जाता था और जाति–पाँति का भेद–भाव रखा जाता था, उन्हें सामाजिक रूप से इतना प्रताड़ित किया जाता था कि उन्हें लाचार होकर विद्यालय छोड़ना पड़ता था। आज समाज में काफी परिवर्तन आ चुका है, दलित वर्ग के बच्चे विद्यालय जाते हैं, उन्हें पढ़ने का भरपूर अधिकार है पर समाज में आज भी उनका निम्न स्थान माना जाता है, तथा समाज उन्हें हीन–भावना का शिकार होने के लिए विवश करता है। 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' (मुजफ्फरनगर) बिहार द्वारा दिनांक 03.02.2008 को 'दलित साहित्य के सामाजिक सरोकार' विषय पर संगोष्ठी हुई जिसमें डॉ. हरिनारायण ठाकुर ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए कहा, ''तन की छुआछूत तो बहुत हद तक मिट चुकी है, पर मन की छुआछूत अभी बाकी है, पूँजीवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, साम्यवाद, गाँधीवाद आदि सभी वाद यहाँ आकर ब्राह्मणवाद में ही विलीन हो जाते हैं। इसलिए दलित प्रश्न केवल दलितों का प्रश्न नहीं है। यह नया अध्ययन सभी पुराने पड़े मूल्य–मान्यताओं और सिद्धान्तों की एक नयी व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसलिए यह शत–प्रतिशत मानवीय सरोकारों का साहित्य है दलित–विमर्श के द्वारा साहित्य और संस्कृति के अनेक पुराने पड़े प्रतिमान एक बार फिर से जीवित और जीवन्त हो उठे हैं, इसलिए इस पर समाज में खुली बहस होनी चाहिए।'' मैं तो पेशे से एक अध्यापक हूँ, मेरे यहाँ लगभग हर वर्ग के अध्यापक हैं, जिसमें चार हरिजन हैं, जिन्हें बात–बात में अन्य अध्यापक पीठ पीछे कहते रहते हैं कि साला चमार है, अभी चमार का असर नहीं गया है। जातीय गुण नहीं जाता है, चाहे व्यक्ति पैसे से कितना ही बड़ा हो जाये। समाज में छुआछूत का यह विष फैला हुआ है, इसे मिटाने के प्रयास हो रहे हैं, पर जो लोग प्रयास कर रहे हैं, उनमें कुछ शोषित वर्ग के हैं, जो तन, मन, तथा धन से लगे हुए हैं, पर कुछ शोषक वर्ग के लोग भी है, जिनमें से कुछ छोड़कर ज्यादातर लोग बुद्धि और तन से तो कार्य करते हैं, पर मन से नहीं। जब तक मन से कार्य नहीं करेंगे, तब तक इस समाज से छुआछूत की भावना दूर नहीं हो सकती है। छुआछूत की भावना इतनी प्रबल है कि इसकी गन्ध हमेशा आती रहती है। और कुछ तो अपवित्र होने पर पवित्र हो जाता है पर दलित किसी भी समय, किसी भी ढंग से पवित्र नहीं हो पाता है, ''अछूतों का अस्तित्व 400 ई. के भी काफी बाद में हुआ हालांकि अपवित्र की मान्यता काफी पहले से थी। पवित्रता थोड़े समय तक रहती थी और जन्म, मृत्यु, मासिक धर्म आदि के अवसर पर ही पैदा होती थी, अपवित्रता का समय बीत जाने पर या पवित्रता का संस्कार कर देने पर अपवित्रता नष्ट हो जाती थी और वह व्यक्ति फिर पवित्र तथा समाज में मिलने योग्य हो जाता था किन्तु अछूतपन इससे भिन्न है, यह स्थायी है, जो हिन्दू उनका स्पर्श करता है, वह तो स्नान आदि से पवित्र हो जाता है, किन्तु ऐसी कोई चीज नहीं, जो अछूत को पत्रि बना सके, वे अपवित्र ही पैदा होते हैं, जन्म भर अपवित्र ही बने रहते हैं। अपवित्र ही मर जाते हैं और जिन बच्चों को वे जन्म देते हैं, वे बच्चे भी अपवित्र का टीका माथे पर लगाये ही जन्म ग्रहण करते हैं।'' अपवित्रता उनका आनुवांशिक लक्षण माना जाता है, जिसके जिम्मेदार समीप के मुट्ठी भर लोग हैं, जो अपने अस्तित्व के लिये दूसरों का अस्तित्व मिटाने पर तुले रहते हैं।

हालॉकि भारत का सामाजिक ढाँचा वैदिक युग से निर्धारित है। इस युग के स्वतंत्र विवाह सम्बन्धों की चर्चा अनेक स्थानों पर मिलती है। मनुस्मृति आदि स्मृति ग्रंथों ने विवाह के सम्बन्धों को नियमों में बाँध दिया। इसी क्रम में भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था को देखा जा सकता है कि पूरी सामाजिक व्यवस्था ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन चार वर्णों में बँटी है। और इसका स्वरूप आज के भी समाज में जातियों के रूप में देखने को मिलता है। आज सारा समाज हमारी इसी व्यवस्था के अनुरूप चल

रहा है। समाज सुधार आन्दोलनों ने इस व्यवस्था को कई बार हिलाने का प्रयत्न किया और दशा यह हुई कि सुधारकों की अपनी ही जाति या वर्ग बन गया। महावीर स्वामी एवं गौतम बुद्ध के आन्दोलन वैदिक युग की जाति–व्यवस्था के विरोध में उठे तो उसका परिणाम यह हुआ कि ये चारों जातियाँ वैसी बनी रहीं परन्तु बहुत से मतावलम्बियों का एक वर्ग बन गया। चतुर्वर्ण के पश्चात् निषाद पंचमों वर्णः की चर्चा निरुक्त नामक वैदिक व्याख्या वाले ग्रन्थ में मिलती है। इसका तात्पर्य यही है कि वैदिकोत्तर युग में इन वर्णों के अतिरिक्त अन्य जातियों को निषाद वर्ग में बाँटा गया था परन्तु यह वर्ण आगे न बढ़ सका। विदेशी आक्रमणकारी मुस्लिम पूर्व युग तक अपना जातीय अस्तित्व स्थापित न कर सके इसलिए शक, हूण आदि आक्रमणकारियों का कोई जातिबोधक नाम न बन सका। ये आक्रमणकारी विदेशी लोग भारतीय जातियों की उपजातियों में समाहित हो गए। इन चारों जातियों में अनेक उपजातियां बनती गईं। ब्राह्मणों में कर्म पूजा, जमींदारी एवं राजसेवा के आधार पर अनेक उपनाम हो गये। ऋषि लोगों के नाम भी विख्यात हुए। इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आदि जातियों में उपजातियाँ बनती गयीं और भारत का सामाजिक जीवन इस जातिवाद के परिवेश में बंधा रहा। विशेष बात यह है कि इतनी जातियों में उपजातियों के होते हुए भी कभी भारत की एकता पर जातीय आधार पर आघात न लगा। सभी जातियों के लोग निर्धन सघन होते हुए भी कभी भारत देश के प्रति अपनी निष्ठा में दुर्बलता नहीं लाए। इसलिए जातीय भेदभावना के आधार पर भारतीय एकता को कभी क्षति पहुँचने का भय उत्पन्न नहीं हुआ था।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत की भावात्मकता को जातीय आधार पर दो व्यक्तियों ने आघात पहुँचाया। पहला व्यक्ति सिंध देश का निवासी बौद्ध धर्मावलम्बी ज्ञानबुद्ध था जिसने मुसलमानी सेना को इसलिए राजा दाहर के दुर्ग एवं सेना का रहस्य बता दिया क्योंकि उसके लिए भारतीय और विदेशी आक्रमणकारी मुसलमानों में जातीय आधार पर कोई अन्तर स्वीकार न था, इसके बदले में राजा दाहर की दो पुत्रियों सूर्य और परमाला के साथ जो बर्ताव विदेशी आक्रमणकारियों ने किया वह आज भी हमारे रोंगटे खड़ा कर देने वाला है। सूर्य और परमाल जैसी वीर पुत्रियाँ भारत में शताब्दियों में कभी–कभी जन्म लेती हैं। क्योंकि ज्ञानबुद्ध ने यदि तब दुर्ग का रहस्य प्रकट न किया होता तो भारत में जातिवादी समस्या भी जन्म न लेती। दूसरा घात जयचन्द ने किया था। मुस्लिम शासन काल में तो उनका गौरवमय समय था। अतः राष्ट्र की शासित जाति बहुसंख्यक होते हुए भी शान्त रही और देश में एकता बनी रही। अंग्रेजी प्रशासन ने अपने युग में भारत की सभी जातियों को एक दूसरे के विरोध में उकसाया और सामाजिक भेदभाव जातीय आधार पर उत्पन्न किया। देश का बंटवारा जातीय एवं धार्मिक आधार पर ही हुआ। चाहे कोई कितना भी झुठलाए परन्तु देश का विभाजन अंग्रेजों को कूटनीति और मुसलमानों की कट्टर धार्मिकता से ही हुआ है। मुसलमानों के भारत में आगमन एवं भारतीयों के मुस्लिम धर्म परिवर्तन के कारण जातीय कट्टरता घर कर गयी। अनेक प्रयत्न किये जाने पर भी यह वैमनस्य कम नहीं हुआ है। कबीर, गुरूनानक आदि सन्तों एवं आधुनिक काल में गाँधी जी, रफी अहमद किदवई जैसे देश सेवियों के आन्दोलनों, भाषणों, व्रतों एवं भूख हड़तालों के कारण भी यह जातीय वैमनस्यता नहीं मिट पायी है।

देश विभाजन और स्वतंत्रता के पश्चात् मुसलमानों को अल्पसंख्यक घोषित किया गया। यह भी विडम्बना है कि देश के एक भाग को लेकर वे बहुसंख्यक भी बने और उनके ही सम्बन्धी भारत में रहकर अल्पसंख्यक बन गए। अब यह एक गम्भीर प्रश्न उठता है कि मुस्लिम शासन के युग में भी तो भारतीय (हिन्दू) लोग

बहुसंख्यक थे। तब भी उन्होंने दंगे नहीं किये। इतिहास में ऐसे उदाहरण कम ही मिलेंगे या नहीं के बराबर मिलेंगे जिनसे यह प्रमाणित हो पाये कि मुस्लिम शासनकाल में बहुसंख्यक जाति वालों ने हमले किये हों।

स्थिति वास्तव में यह है कि मुसलमान जब भारत में आए तो वे विजेता के रूप में आए और बहुत बड़े प्रयत्न के बावजूद भी भारतीयों को मुस्लिम धर्म में परिवर्तित न कर सके और न ही स्वयं भारतीय जीवन पद्धति को अपना सके। फारस में जाकर मुसलमानों ने अपनी धार्मिक विजय पाई और सांस्कृतिक क्षेत्र में रोमनों को पूर्णतया प्रभावित किया था। परन्तु मुसलमान जाति तो धर्म एवं सामाजिक जीवन में अपने शासनकाल में भी भारतीयों को न तो पूर्णतः अपनी ओर आकृष्ट कर सकी और न ही भारतीय जीवन पद्धति को अपना सकी। इसीलिए सामाजिक एवं जातिगत मतभेद उत्पन्न हो गये जो आज तक नहीं मिटे हैं। गत सहस्त्र वर्षों से इस संकीर्ण मनोवृत्ति को मिटाते–मिटाते हम देश का विभाजन देख चुके हैं और अब देश में ऐसी राजनैतिक पार्टियों का जन्म हुआ है जो वैमनस्य तो कम नहीं कर सकीं बदले में समाज में विषमता का जहर चरम सीमा पर घोला जो कि भारतीय एकता पर एक बदनुमा दाग है। इसलिए सामाजिक जीवन भी आज विषमय बना हुआ है।

वैज्ञानिक विश्व की चकाचौंध में पलने वाले भारतीयों को अब इस सामाजिक विषमता को तो मिटाना ही होगा ,जो कि संकीर्णता एवं पिछड़ेपन के कारण उत्पन्न हुई है परन्तु उसे सबसे बड़ा कार्य मुसलमानों के मन में जो विषमता है उसे मिटाना हटाना है। यह जातीय विषमता शिक्षा से मिट सकती है अथवा जातीय सद्भाव और पारिवारिक सम्बन्धों से।

अंततः वैश्वीकरण के सम्बन्ध में गाँधी का यह कथन बहुत प्रासंगिक लगता है कि ''मैं यह नहीं चाहता हूँ कि मेरा घर चहारदीवारी व खिड़कियों में कैद हो। मैं चाहता हूँ कि दुनिया की सभी संस्कृतियों की हवायें मेरे घर में स्वाभाविक रूप में आयें, परन्तु मैं यह भी चाहता हूँ कि हवाओं के थपेड़ों से मेरे पैर न उखड़ें और मैं अपनी जमीन पर अडिग खड़ा रहूँ।'' अतः वर्तमान परिप्रेक्ष्य में आज वैश्वीकरण पर चिंतन, मनन और गम्भीर शोध के साथ सामाजिक समरसता लाने की शिद्दत के साथ आवश्यकता है।

सन्दर्भ

- भारतीय समाज– मुद्दे एवं समस्यायें,प्रो0 एम0एल0 गुप्ता,डॉ0 डी0डी0 शर्मा 2006,साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा
- सामाजिक विचारों का आधार,प्रो0 एम0एल0 गुप्ता, डा0 डी0डी0 शर्मा,2010, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स,आगरा
- रहीस सिंह का लेख– 'गरीबी निर्धारण का अर्थशास्त्र', योजना नवम्बर, 2008
- मंजू श्रीवास्तव, डेमोक्रेसी, डवलपमेन्ट एण्ड गवर्नेस इन द ईरा ऑफ ग्लोबलाइजेशन, डाइनामिक्स
- ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, रिसर्च जर्नल, लोक प्रकाशन विभाग, लखनऊ वि. वि. वोल्यूम 9.10, जनवरी–दिसम्बर, 2001
- पत्रिका, 'इन्टरनेशनल सोश्योलॉजी' अंक–5–2000
- राक्र्ट्रसन लेख–मैपिंग ग्लोबल कन्डीशन–ग्लोबलाइजेशन एजद, सेन्ट्रल कन्सेप्ट पुस्तक–ग्लोबल , कल्चर फीडर स्टोन, 1990 न्यूयार्क
- जे. पी. सिंह आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, प्रेटिस हाल ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 2005

- अशोक कुमार सिंह, वैश्वीकरण के युग में जनतंत्रा एवं विकास, द यू. पी. जर्नल ऑफ पालिटिकल ,साइंस, वोल्यूम–9, जनवरी– दिसम्बर, 2003
- एस. सी. सिंहल, उदारीकरण और वैश्वीकरण को विकास पर प्रभाव तुलनात्मक राजनीति, अग्रवाल , ग्रका आगरा 2004
- हंस : सम्पादक राजेन्द्र यादव, अप्रैल–2008
- .रचनाकर्म : सम्पादक डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय, अप्रैल–जून–2005

Copyright © 2017, Dr.Nirmal Singh Yadav. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.